ओ३म्

जैनी पण्डितों के प्रश्नोत्तरों की

# समीक्षा.

( संख्या २ )

श्री स्वामी दर्शनानन्द

सरस्वती कृत

वैदिकयन्त्रालय, अजमेर.

१००० प्रति } जून १९१२ { मूल्य )॥

५३१५ (१)
२६७५
दिनांक ...... ६-१-१५
डॉ० भवानीलाल भारतीय
तिथि ६-१-१५
पुस्तकालय २६७२
गुरु विरजानन्द
5184

मिलने का पता—दयानन्द वेदप्रचारक मिशन लाहौर।

ओ३म् ॥

# प्रश्नोत्तर समीक्षा ॥

आर्य्यसमाज के सुप्रसिद्ध विद्वान्, प्रचारक और संन्यासी स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती ने "जैनी पंडितों से प्रश्न" शीर्षक एक पैम्फलेट उर्दू भाषा में लिखकर दयानन्द वेदप्रचारक मिशन के वास्ते आर्य्यस्टीम प्रेस लाहौर में मुद्रित करवाकर प्रकाशित किया है, जिसमें कि आपने जैन विद्वानों से बीस प्रश्न किये हैं। स्वामीजी और सर्वसाधारण के हितार्थ उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर प्रकाशित किया जाता है।

( १ ) जिस मुक्ति के वास्ते आप जैनधर्म्म को ग्रहण किये हैं वह जीवका स्वाभाविक गुण है या नैमित्तिक ?, अगर स्वाभाविक धर्म है तो इसके वास्ते जैनधर्म्म की क्या जरूरत है ?, अगर नैमित्तिक धर्म्म है तो उसका निमित्त यानी सबब क्या है ?।

( उत्तर ) मोक्ष जीव का कोई गुण नहीं वरन अनादि बद्ध कर्म्म मल से छूटे हुये आत्मा की शुद्ध पर्य्याय है और उसी अनादि कर्म्ममल के बन्धन से मुक्त होने के अर्थ जैनधर्म्म की आवश्यकता है।

समीक्षा---कर्म उसे कहते हैं जो किया जावे, किया किसी काल में जाता है जो किसी काल में हो वह अनादि नहीं कहला सक्ता, संसार के विद्वानों ने निश्चित किया है कि ज्ञान तीन प्रकार का है, ( १ ) नित्य पदार्थों का ज्ञान जिसे सत्यविद्या या पारमार्थिक ज्ञान कहते हैं, नित्य वो है कि जिसका आदि अन्त दोनों न हों। ( २ ) अनित्य पदार्थों का ज्ञान जिसे विद्या या व्यावहारिक ज्ञान कहते हैं, अनित्य वह है जिसका आदि अन्त दोनों हों। ( ३ ) मिथ्या ज्ञान या अविद्या जिसे प्रातिभासिक ज्ञान कहते हैं, जैनियों के बन्धन और मुक्ति का लक्षण सत्य विद्या और विद्या में तो आ नहीं सक्ता इस वास्ते अविद्या ही कहला सक्ती है।

बद्ध उसे कहते हैं जो बंधा हो, बन्धना क्रिया है जो काल के विना हो नहीं सक्ती, इसलिये बन्धन अनादि मानना अविद्या है, नित्य पदार्थ में पर्य्याय अर्थात् अवस्था मानना दूसरी अविद्या है, आत्मा नित्य है, कर्म्म मल उपाधि होसक्ती है, जो उपाधि अनादि कदापि नहीं होसक्ती, अतः जैनियों का बन्धन असम्भव है क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसका आदि हो और अन्त न हो, असम्भव को धर्म्म जानना अविद्या है।

( २ ) मुक्ति नित्य है या अनित्य ?, अगर नित्य है तो उसको किसी कारण से होना किस तरह ममकिन है ?, क्योंकि

नित्य की तरफ़ यह है—जो किसी कारण से पैदा न हो। अगर अनित्य है तो उसका अनन्त होना बन नहीं सक्ता क्योंकि सृष्टि में ऐसी कोई शय नहीं जिसका आदि हो और अन्त न हो। क्या किसी जैनी ने एक किनारा वाला दरिया या एक हद वाली शय देखी है ?।

( उत्तर ) जीव की मुक्ति पर्य्याय अनादि कर्म्म बन्ध और उसके कारण रागद्वेषादि के अभाव होने पर प्रगट होने से नित्य नहीं और पुनः नाश न होने से अनित्य भी नहीं है। वरन वह प्रध्वंसाभाव या धान से निकले हुये चावल की अवस्था समान सादि अनन्त है।

समीक्षा—क्या इस उत्तर को पढ़कर किसी भी मनुष्य को निश्चय तो क्या सन्देह भी होसक्ता है कि जैनी लोग किसी वस्तु का तत्वज्ञान रखते हैं, पहिली अविद्या अनादि कर्म्मबन्ध और उसका कारण, यदि जैन सभा केवल अनादि शब्द का लक्षण जानती होती तो कर्मबन्ध को अनादि मानकर उसका कारण न मानती।

अनादि उसको कहते हैं जिसका कारण न हो, एक ओर तो अनादि अर्थात् कारण से शून्य बताना दूसरी ओर उसका कारण राग और द्वेष को लिखना प्रकट करता है कि उनको अनादि शब्द का भी ज्ञान नहीं। यदि

अनादि बन्ध का कारण राग व द्वेष होसक्ते हैं तो प्रवाह से अनादि सृष्टि का कारण ईश्वर होने में क्या विष मिला है; इससे आगे धान से निकले हुए चावल का जो दृष्टान्त दिया है वह और भी योग्यता को प्रकाशित करता है, क्या चावल और छिलके का सम्बन्ध अनादि है, भला जब दोनों ही उत्पन्न हुए हुए हैं तो उनका सम्बन्ध अनादि किस प्रकार होसक्ता है। हमको नागरिक जैन महाशयों की ओर से तो इसके प्रति शोक नहीं, सम्भव है उन्होंने खेत पर जाकर न देखा हो, परन्तु ठाकुर दिग्विजयसिंहजी को जो एक ग्राम के रहनेवाले हैं इतना बोध अवश्य होना चाहिये कि छिलका पहिले उत्पन्न होता है और चावल उसके पश्चात् पड़ा करता है न तो धान अनादि है और न चावल ( धान ) छिलके का सम्बन्ध अनादि है. फिर यह सादि अनन्त और अनादि सान्त का उदाहरण कैसे होसक्ता है; इस कारण यह युक्ति बुद्धिशून्य सिद्ध होती है, अतः जैनियों की मुक्ति जबतक विद्या और बुद्धि से सिद्ध न कीजावे तबतक असम्भव ही समझी जावेगी।

( ३ ) जैनधर्म में सृष्टिकर्त्ता तो ईश्वर को मानते ही नहीं। जिस परमाणु पुद्गल या भूतों के स्वभाव से सृष्टि की पैदाइश तसलीम करते हैं वह स्वभाव से गतिवाला यानी मुतहर्रिक वा लिजात है या गतिशून्य यानी हर्कत से मुबर्रा।

अगर गतिवाला है तो संयोग परमाणुओं में हो नहीं सक्ता, क्योंकि सब की गति यानी हर्कत बराबर होने से जो दरम्यान में फासला है वह बना ही रहेगा। अगर गैरमुतहर्रिक यानी गतिशून्य तसलीम करें तो भी संयोग नहीं होसक्ता, लिहाज़ा कोई शय बन नहीं सक्ती।

( उत्तर ) जैनधर्म्म सृष्टि की उत्पत्ति नहीं मानता वरन केवल उसके भीतर की समस्त वस्तुओं का अवस्था से अवस्थान्तर होना मानता है। परमाणुओं में गति करने या संयोग वियोग होने की शक्ति है, परन्तु उनकी व्यक्तता अन्य कारणों पर अवलम्बित है और कारणों की भिन्नता उनको मिलने से दोषापत्ति व्यर्थ है।

समीक्षा—क्या परिणाम अर्थात् अवस्था से अवस्थान्तर मानते हुए उत्पत्ति को न मानना अज्ञानता नहीं है, क्योंकि परिणाम भी सृष्टि में के छै विकारों में से एक है, यदि कोई कहे कि वृद्धावस्था को हम मानते हैं परन्तु बालकपन और युवावस्था को नहीं तो क्या यह अज्ञानता न होगी ?।

यह मानना कि परमाणुओं में गति करने की शक्ति है अथवा कि परमाणुओं की गति ही से संयोग होना उनको ज्ञानवाले मानना है, क्योंकि शक्ति आविर्भूत और तिरोभूत होसक्ती है और इस कारण सिवाय चेतन के दूसरे में रह ही नहीं सक्ती। मालूम होता है कि जैन लोग शक्ति का

लक्षण भी नहीं जानते, यदि उनको शक्ति का लक्षण विदित होता तो जड़ परमाणुओं में शक्ति नहीं मानते। संयोग वियोग की शक्ति स्वयं परमाणुओं में किस प्रकार हो सक्ती है इसका कारण यह है कि संयोग वियोग पाकज गुण हैं और परमाणु द्रव्य के होते हैं, द्रव्य किसी प्रकार भी गुण हो ही नहीं सक्ता। आप जो लिखते हैं कि परमाणुओं में की संयोग वियोग की शक्ति की व्यक्तता अन्य कारणों पर अवलम्बित है कृपाकर उन कारणों को भी प्रकट कर दीजिये।

( ४ ) क्या जैनधर्म के वे आचार्य जिन्होंने जैनधर्म के शास्त्रजी लिखे, राग से रहित थे या रागवाले ?, अगर राग से रहित थे तो उन्होंने शास्त्र कैसे बनाये ? अगर रागवाले थे तो उनके बनाये ग्रंथ किस तरह प्रमाण होसक्ते हैं ?।

( उत्तर ) जैनधर्म के शास्त्रकर्त्ता आचार्य स्वल्प रागी अर्थात् सांसारिक विषय भोगों से नितान्त विरक्त परन्तु परोपकार में तल्लीन थे और वह उनका स्वल्प राग उनके शास्त्रों को सर्वज्ञ वचन प्रमाण रचने से अप्रमाणिक करने में कारण नहीं है।

समीक्षा—जैन धर्म के शास्त्रकर्त्ता व आचार्य्य स्वल्परागी थे और वह परोपकार में लगे हुए थे, परोपकार में अन्तःकरण को शुद्ध करने के निमित्त लगते हैं जो ईश्वरप्राप्ति का दूसरा साधन है। यदि मन शुद्ध होजाय

तो किसी जीव को परोपकार में लगने की आवश्यकता नहीं, अतः स्वल्परागी जीव ईश्वरप्राप्ति के लायक ही नहीं थे फिर यदि उन्होंने नित्य ईश्वर को नहीं माना तो आश्चर्य्य ही क्या है, क्योंकि जो जिसके गुणों को यथावत् नहीं जाने वह उसकी निन्दा किया ही करता है। अतएव ईश्वर के नित्य न होने में जो जैन आचार्य्यों का कथन है वह ऐसा ही है जैसा कि लोमड़ी को जब उछलने कूदने पर अंगूर न मिले तो कहा कि अभी कच्चे हैं कौन दांत खट्टे करे।

( ५ ) आप लोग जो जगत् को अनादि मानते हैं तो जगत् प्रवाह से अनादि है या स्वरूप से ?, अगर प्रवाह से अनादि है तो उसका सबब क्या है क्योंकि कोई प्रवाह बिला सबब हो नहीं सक्ता। अगर स्वरूप से मानते हैं तो विकार क्योंकर होसक्ते हैं ? क्योंकि विकारों में पहिला विकार पैदा होना है। जो चीज़ पैदा होती है वह ही बढ़ती है। ऐसी कोई चीज़ बतलाओ जो पैदा न हो और बढ़ती हो।

( उत्तर ) यह जगत् प्रवाह से अनादि नहीं क्योंकि किसी समय में इसका अभाव नहीं होता और न स्वरूप से ही अनादि है क्योंकि सदैव एकसा नहीं रहता। वरन इस प्रकार अनादि है कि न तो यह कभी बना था और न कभी इसका नाश होगा। इस जगत् के समस्त पदार्थ परिणमन-

शील हैं और इसी कारण यह प्रतिक्षण अवस्था से अवस्थान्तर हुआ-करता है।

समीक्षा—अनादि दो ही प्रकार का हो सक्ता है जिसको जैन लोग मानते नहीं, न तो सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानते हैं और न स्वरूप से, इस कारण जैनियों का यह सिद्धान्त कि जगत् अनादि है जाता रहा। अब यह कथन कि "यह कभी नहीं बना था" यह सिर्फ कथनमात्र है जिसकी दृढ़ता या सिद्धि में जैनी कोई युक्ति नहीं दे सक्ते. यह कथन ऐसा ही-है जैसा कि यदि सप्ताह के अन्त में चाभी लगने वाली घड़ी को देखकर कोई कहने लगे कि न तो यह घड़ी कभी चली थी और न बन्द होगी। उन ६ विकारों में से जो कार्य्य जगत् में होते हैं एक परिणामशील होना है, यथा—मनुष्य का शरीर परिणामशील है तो क्या यह शरीर पैदा नहीं हुआ. कोई परिणामशील वस्तु अनादि नहीं हो सक्ती यदि यह सिद्ध करने के लिये कि कोई वस्तु परिणामशील होते हुए भी अनादि होसक्ती है जैनियों के पास कोई युक्ति तथा उदाहरण हो तो प्रस्तुत करें अन्यथा उनको जगत् का कारण मानना पड़ेगा क्योंकि परिणाम सदैव कार्य्य में ही हुआ करता है जैसा कि मनुष्य के शरीर और वृक्षादि में देखा जाता है।

( ६ ) जो कर्म्म का बन्धन अनादि है उसका अन्त किस

तरह हो सक्ता है ?, क्योंकि अनादि चीज़ के दोनों किनारे नहीं होसक्ते। जिसका एक किनारा है उसका दूसरा होना लाज़मी है।

( उत्तर ) किसी जीवके कर्म्म का बन्धन अनादि अनन्त और किसी के प्रागभाव या चावल और उसके ऊपर के धानके छिलके के सम्बंध समान अनादि सान्त है। कर्म्म बन्ध का कारण राग द्वेषादि विभाव है और उसके नष्ट हो-जाने पर वह भी अन्त को प्राप्त होजाता है।

समीक्षा—जिन जीवों के कर्म्म का बन्धन अनादि व अनन्त है उनकी मुक्ति तो जैनधर्म्म से हो ही नहीं सक्ती, इस बात का ज्ञान कि अमुक जीव के कर्म्म का बन्धन अनादि सान्त है और उस दूसरे का अनादि अनन्त है, किस तरह होता है। जिनके कर्म का बंधन अनादि अनन्त है उनको जैनधर्म्म से कोई लाभ ही नहीं जैनियों को अनादि के लक्षण का ज्ञान नहीं अन्यथा एक ओर तो कर्म्मबन्ध का कारण राग द्वेष आदि का विभाव बतलाया जाता है और दूसरी ओर उसको अनादि कहा जाता है, इन दो व्याघातिक वचनों को सुनकर जैनियों की दशा पर शोक होता है. जैनी लोग धर्म्म के श्रद्धालु हैं, धर्म्मार्थ धन व्यय कर सक्ते हैं, लेकिन ज्ञान की अपेक्षा ऐसे निर्बल हैं कि अपनी कही बात को आप नहीं समझते, असत्य दृष्टान्तों पर धर्म्म की स्थापना करना

बुद्धिमत्ता नहीं है और न प्रागभाव कोई पदार्थ है जिसका दृष्टान्त या उदाहरण देसकें. चावल और छिलके का अनादि सम्बन्ध नहीं क्योंकि कार्य्य है।

( ७ ) कर्म्म जो जीव करता है उसका फल देनेवाला आप मानते ही नहीं और यह नियम है कि जो जिससे पैदा होता वह उससे कमज़ोर होता है और कमज़ोर किसी ज़बरदस्त को बांध नहीं सक्ता। लिहाज़ा कर्मों का फल किस तरह होता है ?।

( उत्तर ) उत्पन्न होनेवाले का उत्पादक से हीन शक्ति होने का नियम नहीं। कर्मों का फल मद्यकी भांति उनके उदयकाल में बाह्य निमित्तकी प्राप्ति के अनुसार होता है।

समीक्षा—आपने यदि कोई व्यभिचार दिखला कर कहा होता कि यह नियम नहीं कि कर्त्ता से कार्य्य निर्बल ही हो तो बात थी। हम देखते हैं कि कर्त्ता चेतन होता है और कार्य्य जड़, अतएव कर्म का जीव से निर्बल होना आवश्यक है. यदि उत्पन्न होने वाला उत्पादक से हीनशक्ति न हो तो कैसे उत्पन्न हो।

( ८ ) जो दृष्टान्त शराब वग़ैरह के पीनेमें नशा आने का दिया जाता है वह सही नहीं, क्योंकि शराब द्रव्य है और पीना कर्म है। वह नशा शराब द्रव्यका है न कि पीने कर्म्म का। अगर पीने कर्म्म का फल कहो तो पानी पीने में भी नशा होना चाहिये, क्योंकि पीना कर्म इस जगह भी है।

( उत्तर ) दृष्टान्त अक्षर प्रत्यक्षर सत्य है। फल द्रव्य और कर्म्म दोनों में ही है। यदि द्रव्य में ही मानो तो बोतलमें या किसी जीवके बिना शराब के पिये ही उसको नशा होना चाहिये, क्योंकि मद्य द्रव्य का सद्भाव है। कर्म्म शब्द जीव की क्रिया का वाचक ही नहीं वरन उससे कार्माण स्कन्धरूप पुद्गल द्रव्य भी इष्ट है जिसका कि बन्ध जीव की रागादिक क्रिया से होता है। जिस प्रकार मद्यके दृष्टान्त में पीने कर्म का फल यह है कि वह मद्य द्रव्य को किसी मनुष्य के पेट तक पहुंचावे और पेटमें पहुंची हुई शराब द्रव्यका फल यह है कि वह अपने उदयकालमें नशा करे, ठीक उसी प्रकार दार्ष्टान्त में जीव की रागादिक क्रियाका फल यह है कि वह ( तीनों लोकमें भरे हुये कर्माण वर्गणाओं का बन्ध जीवसे करावे ) और इन बन्ध अवस्था को प्राप्त कर्माण वर्गणाओं ( जिनमें कि उनके बन्ध करते समय जीव के भिन्न २ परिणामानुसार भिन्न २ फल देने की शक्ति होगई है ) का फल यह है कि वह अपने उदयकाल में भिन्न २फल बाह्य निमित्तानुसार दें।

समीक्षा—तो फिर इस प्रकार फल कर्म का तो मिला नहीं और द्रव्य ने कर्म किया नहीं इससे भी अन्धेर नगरी होगी, क्या पुद्गल यानी अचेतन द्रव्य भी कर्म किया करता है क्या जीव के रागादि से पुद्गल का बन्ध होता है, पुद्गल तो अचेतन होने के कारण बद्धस्वरूप

नी है आप शराब के दृष्टान्त को अक्षर प्रत्यक्षर सत्य मा-

नते हुए लिखते हैं नशा शराब द्रव्य का फल है तो फिर यह कर्म का फल तो सिद्ध नहीं हुआ जो आप को इष्ट था, आप एक ओर से कर्मबन्ध को अनादि मानते हैं दूसरी ओर से जीव से बन्ध कराना मानते हैं। ऐसे अनर्गल सिद्धान्त कौन बुद्धिमान् मान सक्ता है।

( ९ ) इसमें क्या प्रमाण है कि जैन शास्त्रोंको जैनों के आचार्यों ने लिखा है, क्योंकि आज वे जैन आचार्य प्रत्यक्ष लिखते हुये तो नजर नहीं आते। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान किस तरह हो सक्ता है?, अगर प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों न हों तो शब्दप्रमाण हो ही नहीं सक्ता। पस जैन शास्त्रों के बनाने वाले कोई आचार्य नहीं।

( उत्तर ) जैन शास्त्र अक्षरात्मक हैं, अतः उनका कर्ता कोई मनुष्य अवश्य होना चाहिये। जिन्होंने उनको बनाया वे ही जैनाचार्य हैं। जैन शास्त्रोंकी निष्पक्षता और यथार्थ वस्तुप्ररूपण उनके कर्ताओं को आचार्य अर्थात् सद्वक्ता सिद्ध करता है।

समीक्षा—आचार्य्य यथार्थ ज्ञानवाले को कहते हैं, जैन शास्त्रों के निर्माणकर्त्ता इस पदवी से विभूषित नहीं किये जाने चाहियें, क्योंकि उनके शास्त्रों में न्याय विरुद्ध व्याघातिक सिद्धान्त हैं, यथा—किसी वस्तु को अनादि मानते हुए भी उसका कारण मानना, असम्भव बातों का मानना जैसा कि ऊपर लिख किया जा चुका है इत्यादि।

( १० ) जैन लोग जिस प्रत्यक्षको प्रमाण मानते हैं वह किसी द्रव्यका हो ही नहीं सक्ता, क्योंकि हरएक चीज़की छः दिशा होती हैं, प्रत्यक्ष एक तरफ़ के गुणों का होता है। जैसे एक किताब को जब देखते हैं तो उसके रूप और परिमाण का प्रत्यक्ष होता है। जब किसी दीवार को देखते हैं तो भी रूप और परिमाण का प्रत्यक्ष होता है। तब किस तरह कह सक्ते हैं कि यह रूप किताब का है और यह दीवार वग़ैरह का।

( उत्तर ) जैन लोग जिस प्रत्यक्ष को प्रमाण मानते हैं उसका लक्षण "विशदं प्रत्यक्षम्" अर्थात् विशद होना प्रत्यक्ष है और उसमें "प्रतीत्यन्तरा व्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्" अर्थात् प्रतीति के होने में किसी प्रकार की रोक न होने और भले प्रकार जान लेने को विशद होना कहने के कारण कोई दूषण नहीं आता।

समीक्षा—क्या लक्षण भी दो हो सक्ते हैं जो आपस में व्याघातिक हों, इस प्रश्न का उत्तर ज़रा सोच समझ कर दीजिये, जो दोष दिये गये हैं उनमें से एक का तो खण्डन करके दिखलाओ केवल युक्तिशून्य इस प्रतिज्ञा से कि कोई दोष नहीं आता, आपका पक्ष सिद्ध नहीं हो सक्ता और न आपका प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध हो सक्ता है।

( ११ ) जैन लोग जिस जीव को मानते हैं उसके होने में क्या प्रमाण है ?, क्योंकि जीव रूप नहीं जो आंखों से नजर आये । रस नहीं जो रसना से नजर आये । बस फिर जैनमत का जीव साबित नहीं होता ।

( उत्तर ) जीव के होने में स्वसम्वेदन मानसिक प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण है और यह नियम नहीं कि प्रत्येक वस्तु का इन्द्रिय प्रत्यक्ष होवे ही ।

समीक्षा—जीव अपने स्वरूप को जानता है या अपनी सत्ता को ? और मानसिक प्रत्यक्ष तो बन ही नहीं सक्ता, क्योंकि इस दशा में प्रमाता और प्रमेय दोनों एक ही होंगे, मन तो प्रमाण है जीव आत्मा प्रमाता और प्रमेय है जिससे आत्माश्रय दोष है । जैसे कोई अपने कन्धे पर आप नहीं चढ़ सक्ता, क्योंकि सवारी और सवार का पृथक् २ होना आवश्यक है ऐसे ही प्रमाता और प्रमेय का पृथक् २ होना आवश्यक है, प्रत्यक्षकर्त्ता और प्रत्यक्ष का विषय दोनों एक कैसे होसक्ते हैं। अनुमान पांचों अवयवों से बनाकर दिखलायें, केवल कह देने से नहीं होसकता । जबतक अनुमान सिद्ध न होवे तबतक जैन शास्त्र का जीव असिद्ध कहना पड़ेगा । जब जीव ही सिद्ध नहीं तो वीतराग कैसे सिद्ध होगा । अनादि राग के नाश होने का दावा करना और उसके वास्ते कोई उदाहरण न देना कहां की बुद्धिमानी है ।

( १२ ) जैन लोग जिन इन्द्रियों से देखकर ईश्वरको जगत्कर्त्ता मानना चाहते हैं तो इन इन्द्रियों को किस प्रमाण से साबित करते हैं। क्या इन्द्रियों का प्रत्यक्ष होता है। जवाब मिलता ही नहीं। अनुमान होता है क्योंकि अनुमान में व्याप्तिका होना लाज़मी है। जिसका तीनकाल में प्रत्यक्ष न हो उसकी व्याप्ति नहीं और जिसकी व्याप्ति न हो, अनुमान नहीं हो सक्ता. लिहाज़ा जैनियोंको इन्द्रियोंकी हस्ती से इनकार करना चाहिये।

( उत्तर ) जैन लोग ईश्वरको जगत्कर्त्ता माननेमें उसको इन्द्रियों से देखना नहीं चाहते, किन्तु प्रमाण चाहते हैं। इन्द्रियोंका ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है।

**समीक्षा—ईश्वर के जगत्कर्त्ता होने का प्रमाण तो अनुमान से सिद्ध है, ईश्वर जगत्कर्त्ता है क्योंकि चाहे परमाणु गतिशून्य मानो चाहे गतिवाला, किन्तु उनका संयोग कर्त्ता के आधीन होगा। घटपटादि की भांति, जहां जहां संयोग है वह इच्छापूर्वक अथवा नियमपूर्वक क्रिया से है, जो चेतन का गुण है। इन्द्रियों का ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है इस प्रतिज्ञा को सिद्ध करके दिखलाइये जिससे पता लगे।**

( १३ ) जैन लोग जिस सप्तभङ्गी न्यायको लेकर ईश्वर की हस्तीके मुतालिक पेश किया जाता है, अगर उस

सप्तभङ्गी न्याय को तीर्थङ्करोंके मुताल्लिक इस्तमाल किया जाव तो उसका नतीजा बतलाइये ।

( उत्तर ) सप्तभङ्गी न्याय से तीर्थंकरोंकी ही नहीं वरन समस्त सत पदार्थों की सिद्धि होती है ।

**समीक्षा—सप्तभङ्गी न्याय से तीर्थङ्करों का सत् होना सिद्ध तो करें, प्रतिज्ञा के साधन में कोई युक्ति तथा उदाहरण दिये विना ही उसे सिद्ध कर देना कौनसा पाण्डित्य है ।**

( १४ ) धर्म्म गुण है, कर्म्म है, स्वभाव है, क्योंकि आप उसको एक पदार्थ मानते हैं जिससे द्रव्य गुण कर्म वगैरह सब हो सक्ता है । वह नित्य है या अनित्य ?।

( उत्तर ) किसी द्रव्यके गुणकी स्वाभाविक पर्यायको धर्म कहते हैं । इसके सिवाय एक अचेतन अमूर्तिक और जीव व पुद्गलके गमनमें सहकारी द्रव्यको धर्म कहते हैं और वह द्रव्य है । इस जगत्के छः द्रव्योंमें धर्म अधर्म आकाश काल और पुद्गल द्रव्यकी अनेक परमाणुओं ( जो कि कदापि स्कन्धरूप नहीं होतीं ) की स्वाभाविक पर्याय ही रहनेके कारण और धर्म एक स्वतन्त्र द्रव्य होनेके कारण अकारणवान होनेसे नित्य है ।

**समीक्षा—एक ओर तो आप द्रव्य के गुण स्वाभाविक पर्य्याय का नाम धर्म बतलाते हैं, दूसरी ओर मूर्त्ति से**

रहित अचेतन और जीव पुद्गल के गमन में सहकारी द्रव्य को धर्म कहते हैं, इससे विदित होता है कि आपको धर्म का निश्चयात्मक ज्ञान नहीं, यदि धर्म किसी द्रव्य के गुण के स्वाभाविक पर्य्याय का नाम है तो वह कौनसा द्रव्य है। यदि धर्म स्वतन्त्र द्रव्य है तो उसके गुण क्या हैं? और धर्म की सत्ता किस प्रमाण से सिद्ध होती है।

(१५) शरीरसे अलाहिदा कभी जीव रहता है या नहीं?, अगर रहता है तो किस प्रमाण वाला होता है अणु, मध्यम या विभु।

( उत्तर ) मोक्षमें जीव विना शरीर रहता है और उसका आकार अन्तके मोक्ष प्राप्त कर लेने के शरीरसे किंचित् न्यून होता है।

समीक्षा—क्या मोक्ष में जीव साकार होजाता है कि जिससे कह सके कि उसका आकार अन्त के मोक्ष प्राप्त कर लेने के शरीर से कुछ न्यून होता है, उसको किसी जैन शास्त्र के प्रमाण से सिद्ध करो। यह किसी जैन आचार्य्य की पुस्तक में दिखलाया जावे अथवा जैन विद्वानों का सर्वसम्मत सिद्धान्त दिखलाया जावे, इसके पश्चात् हम इस विषय पर लेखनी उठावेंगे। इस समय इस लेख को प्रमाण न मानकर हम इस पर अधिक नहीं लिखते।

(१६) क्या एक ही शयमें दो मुतजाद धर्म रह सकते हैं या नहीं, जैसे नफी व हस्ती, सर्दी व गर्मी। अगर नहीं रह

सक्ते तो सप्तभङ्गी न्यायका ख़ातमा। अगर रह सक्ते हों तो उसकी मिसाल दो। अगर मिसाल नहीं तो उस को न्याय किस तरह कह सक्ते हैं।

( उत्तर ) एक पदार्थ में दो विरुद्ध गुण अपेक्षा से रह सक्ते हैं। यथा—एक ही मनुष्यमें शत्रु मित्रादि विरुद्ध गुण।

समीक्षा—विदित होता है कि जैनियों को व्याघातिक और सापेक्ष गुणों में भेद मालूम नहीं, क्योंकि अपेक्षा से सापेक्ष गुण रहा करते हैं न कि व्याघातिक। सप्तभङ्गी में व्याघातिक हैं न कि अपेक्षा। यथा—"है" और "नहीं है" यह व्याघात—क्या कोई बुद्धिमान् ऐसा भी कर सकता है कि अमुक की अपेक्षा है और अमुक की अपेक्षा नहीं। शत्रु व मित्र व्याघातिक हैं वा सापेक्ष। इसका भी ज्ञान न रखनेवाले लेखक से आर्यों के तत्त्वज्ञान की मीमांसा देखकर तो मुख से सहसा यही निकलता है:—

बुत करें आरज़ू ख़ुदाई की,
शान है तेरी किबरियाई की।

(१७) जिसकी उपासना कीजाती है उसके सर्व गुण आते हैं या कोई कोई ?, अगर सब गुण आते हैं तो मूर्तिपूजनके साथ जड़ता आना लाज़मी है। जहां जड़ता और चैतन्यता दो शामिल होजावें उसे अविद्या कहते हैं। अगर कोई गुण आता है तो उसमें न्याय बताइये कि किस नियम से आता है।

( उत्तर ) किसी दूसरे द्रव्यका गुण किसी दूसरे द्रव्य में कदापि नहीं आता, परन्तु किसी अन्य पदार्थ के निमित्त से किसी पदार्थ के गुण शुद्ध या अशुद्ध होजाते हैं । जीव के चारित्र गुण की अशुद्ध रागादिक परणतिको दूर करने में मूर्तिमें अङ्कित वीतराग और शान्ति छवि निमित्तकारण है ।

समीक्षा—क्या शुद्धि गुण नहीं ?, किसी के गुण अशुद्ध या शुद्ध होना मानना स्पष्टतया गुणों में गुणों का मानना है । यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि गुण में गुण नहीं रहा करता, क्योंकि गुण का लक्षण ही यह है कि जो द्रव्य के आश्रय रहे और स्वयं गुणवान् न हो । पदार्थ छः हैं–द्रव्य गुण आदि, इनमें गुण द्रव्य से सूक्ष्म है । अब किस पदार्थ से किसके गुण अशुद्ध हुए । मूर्ति में अङ्कित वीतराग द्रव्य है, चारित्र कर्म हैं, रागदिक गुण हैं । न द्रव्य का कारण गुण हो सकता है न गुण का कारण द्रव्य हो सकता है । द्रव्य से द्रव्य पैदा हो और गुण से गुण यह नियम है । इससे आपका उत्तर न्याय विरुद्ध है ।

( १८ ) क्या जीव और अजीव जिन दो पदार्थों को आप तसलीम करते हैं, इनको सप्तभङ्गी न्यायसे मुबर्रा मानते हैं ? ।

( उत्तर ) नहीं ।

समीक्षा—यदि सप्तभङ्गी न्याय से रहित नहीं मानते तो इस न्याय से सिद्ध करके दिखलाइये, यदि सिद्ध होजावे तो मानिये अन्यथा छोड़ दीजिये ।

(१९) पाप व पुण्यको तमीज़ करनेके वास्ते आप किस कसौटी को तसलीम करते हैं। वह कसौटी किसी आचार्यने तज़बीज़ की है या अनादि काल से चली आती है।

( उत्तर ) पाप और पुण्य ज्ञान की कसौटी से जाने जाते हैं और वह अनादिकालीन है।

समीक्षा—ज्ञान गुण है जो किसी ज्ञानी में रहेगा। सर्वज्ञ ज्ञानी तो आप कोई मानते नहीं जो अनादि हो, अनादि तो आप के मतमें कर्म बन्धन से बंधे हुए जीव हैं। उनका ज्ञान तो पाप पुण्य की कसौटी होना सम्भव नहीं। दूसरे ज्ञान से शून्य पुद्गल है उसका गुण भी अनादि ज्ञान नहीं हो सकता। तीसरा धर्म है वह ज्ञान से शून्य है इस कारण उसका ज्ञान भी अनादि नहीं। चौथा अधर्म है उसका गुण भी ज्ञान नहीं। अतएव अनादि ज्ञान का गुणी कोई सिद्ध नहीं होता और गुणी के विना गुण रहा नहीं करता। अतएव यह उत्तर जैन सिद्धान्त के नाश का हेतु है।

(२०) आपके जीवोंकी संख्या अनन्त है और काल भी अनन्त है। जीवोंकी तादादमें कमी नहीं और जो जीव मुक्त होजाता है। गोया जीवकी तादाद कभी ख़तम या बहुत कम तो न होजायगी, जिससे सृष्टि का सिलसिला ख़तम होजावे क्योंकि जिसमें आमदनी न हो ख़र्च हो उसका दिवाला निकलना लाज़मी है।

( उत्तर ) जीवों की राशिमें नवीन वृद्धि न होने और मोक्षसे न लौटने पर भी उनका निरवशेष अन्त न होगा।

यथा—आपके माने हुये सर्वव्यापी और अनन्त ईश्वरका किसी दिशा विशेष में किसी जीवके निरन्तर चले जाने पर ॥

कुंवर दिग्विजयसिंह, वीधूपुरा ( इटावह ).

---

श्रीजैनतत्वप्रकाशिनीसभा की आज्ञानुसार मन्त्री चन्द्रसेन जैनवैद्य ने रामनारायण प्रेस इटावा में छपाकर प्रकाशित किया।

ता० १ जून १९१२। संख्या १०००.

समीक्षा—ईश्वर जीव से सूक्ष्म है अतएव जहां जीव रहता है वहां ईश्वर भी रह सकता है। इस कारण उसकी कोई हानि नहीं, इसी कारण जीवों में कमी है काल में कभी नहीं वह तो अनन्त है। अनन्त काल के आधे में अनन्त जीव आधे रह जावेंगे। जब $\frac{3}{4}$ अनन्त काल का गुज़रेगा तब जीवों की संख्या रह जावेगी। जिससे इस सिद्धान्त का दूषित होना स्पष्ट है। ओ३म् शम्.

## चेलेञ्ज।

हमने जैनी पण्डितों से २० प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर किसी जैनी पण्डित ने तो नहीं दिया, परन्तु जैन तत्वप्रकाशिनीसभा इटावाने श्रीमान् कुँवर दिग्विजयसिंहजी वीधूपुरा इटावा द्वारा उनका उत्तर दिलाया। कुँवर दिग्विजयसिंहजी जैनधर्म के प्रतिष्ठित विद्वान् न होने के कारण सम्भव है कि उनके दिये यह उत्तर जैनियों के

लिये प्रामाणिक अथवा सर्वमान्य न हों, परन्तु जैनतत्वप्रकाशिनीसभा इटावा द्वारा प्रकाशित किये जानेसे यह उत्तर प्रामाणिक भी समझे जासकते हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है वह सत्यासत्य की परीक्षा करे कि जिससे असत्यको त्याग सत्य को ग्रहण करता हुआ वह अपने जीवनको सत्याश्रित कर सफल करसके। हम हिन्दुस्तान के समस्त जैन धर्मावलम्बी विद्वानों को चेलेञ्ज करते हैं कि यदि वे कुँवर साहिब के उत्तरों को, जो हमारी समझ में असत्य और भ्रममूलक हैं, सत्य समझते हों तो सत्य सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ करें। यदि इन उत्तरों को असत्य और अप्रामाणिक समझते हो तो ऐसा किसी पत्र द्वारा प्रकाशित करदें और हमारे किये प्रश्नों का सत्य उत्तर प्रदान करें। इस शास्त्रार्थ की सूचना शास्त्रार्थ की तिथिसे एक मास पूर्व "दयानन्द वेदप्रचारक मिशन लाहौर" के पतेसे मेरे पास पहुंचनी चाहिये, इस कारण कि किसीको असुविधा न हो। शास्त्रार्थ देहली, आगरा, अजमेर में से किसी स्थान पर होसकता है। जैन विद्वानों का इन उत्तरों को सत्य सिद्ध करना और हमारा पक्ष उनको असत्य सिद्ध करना होगा और जो आक्षेप जैनधर्मावलम्बी विद्वान् वैदिक धर्म पर करेंगे, उनका उत्तर हम देंगे।

वैदिकधर्मका सेवक—
दर्शनानन्द सरस्वती,

ओ३म्

# शास्त्रार्थ-अजमेर ॥

जो कि

जैनपंडित गोपालदासजी

और

श्रीस्वामी दर्शनानन्दजी के मध्य

ता० ३० जून सन् १९१२ ई०

को

गोदों की नसियां में हुआ.

( All rights reserved )

प्रकाशक—

श्रीहरिश्चन्द्र त्रिवेदी.

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

मूल्य )॥।

गुरुकुल विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पुस्तक परिग्रहण क्रमांक
5184

ओ३म्

शास्त्रों में कहा गया है कि जब २ अधर्म्मकी वृद्धि और धर्म्म का ह्रास होता है तब २ उस परमदयालु परमात्मा की प्रेरणा से जीवों को अधर्म्म से बचा सत्य मार्ग पर चलाने के लिये किसी न किसी महानात्मा का जन्म होता है। इस ही नियम के अनुसार जब भारतवर्ष में यज्ञादिकों में पशु बलिदान होने लगे थे तब एक महानात्मा बुद्धदेव का जन्म हुआ था, जिन्होंने "आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः" इस सिद्धान्त को सन्मुख रख मनुष्यों को उस पापकर्म से बचने का उपदेश दिया। इनके अनुयायी बौद्ध नाम से विख्यात हुए। इस मत में जबतक वैदिक सिद्धान्तों की प्रबलता रही, तबतक इसकी बड़ी उन्नति हुई। भारतवर्ष के राजघरानों के अतिरिक्त द्वीपान्तरों में भी इस मत ने अधिकार प्राप्त कर लिया। जैनमत भी इस ही धर्म्म की एक शाखा है। जब इन मतों के सिद्धान्तों में परिवर्त्तन हुआ, जगत्कर्त्ता परब्रह्म परमेश्वर तथा उसके ज्ञान वेद से विमुख होकर इन मतों के अनुयायी यह कहने लगे कि "जगत्कर्त्ता कोई नहीं है, यह सृष्टि तो यूंही चली आई है और सदा सर्वदा यूंही चली जायगी, जीवात्मा के साथ राग, द्वेष और तज्जन्य कर्म्मों का ब-

श्रीदिग्विजयसिंहजी ने दिये। इनके इस हौसले को देख स्थानीय जैनबालकों ने भी एक "जैनकुमारसभा" नामक संस्था स्थापित कर जैनतत्वप्रकाशिनी सभा इटावा को अजमेर नगर में बुलाया और "आर्य्यसमाज से शास्त्रार्थ करेंगे" इस ध्वनि से आकाश को गुञ्जायमान कर दिया।

दैवयोग से इन्दौर जाते हुए श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज का भी अजमेर नगर में ठहरना होगया। सामाजिक पुरुषों ने दिग्विजयसिंहजी के दिये हुए उत्तर स्वामीजी के दृष्टिगोचर कराये। स्वामीजी ने इन उत्तरों की आलोचना तथा जैनमतसमीक्षा नामक एक पुस्तक प्रकाशित कर एक महीने की सूचना पर शास्त्रार्थ करने के निमित्त घोषणापत्र ( challenge ) प्रकाशित कर दिया। जैनविद्वानों ने "ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता नहीं है" इस विषय पर व्याख्यान दिये, जिनसे विचारशील श्रोताओं के सिद्धान्तों में गड़बड़ होने लगी और अनेक भद्रपुरुष जिज्ञासुभाव से श्रीस्वामीजी महाराज के पास अपनी शङ्काओं को मिटाने के निमित्त आने लगे। आर्य्यसमाज धर्मजिज्ञासुओं की सेवा करने के लिये सर्वदा तत्पर रहता है। निदान आर्य्यसमाज के मंत्रीजी महोदय ने व्याख्यानों का प्रबन्ध कर जैनियों की युक्तियों का खण्डन कराना आरम्भ करदिया और आलोचना प्रत्यालोचना के दोनों ओर से विज्ञापन निकलने लगे। दोनों ओर के व्याख्यानों में धर्मजिज्ञासु सहस्रों की संख्या में उपस्थित होने लगे। हमारे जैनी भाइयों ने शतसः जैनियों को आर्य्यसमाज में आते और शङ्कितचित्त होते देखकर चाल से काम लेना आरम्भ किया। तारीख २६ जून १९१२ की रात को ११॥ बजे जब उनके यहां व्याख्यान समाप्त हुआ

हार समझी जायगी। जैनीभाइयों ने समझा था कि २६ तो ख़तम होही चुकी, ३० तारीख़ का रविवार है कहीं नोटिस न छप सकेगा, पहिली जौलाई को हम चले ही जायँगे। बस शास्त्रार्थ से सहज में पीछा छूट जायगा और आर्य्यसमाज की हार की हवाइयां उड़ जायँगी, परन्तु यहां क्या था, वैदिक-प्रेस के कार्य तत्पर कर्म्मचारियों ने प्रातःकाल होतेही ७ बजे विज्ञापन निकाल दिया कि "शास्त्रार्थ मंजूर है, समय, स्थान, विषय, मध्यस्थ आदि का प्रबन्ध कियाजाय" जैनीभाइयों ने बड़ी फुरती की और दो घंटे बाद अर्थात् ९॥ बजे ही चिट्ठी भेजकर सूचना देदी कि आजही दोपहर के दो बजे शास्त्रार्थ के लिये गोदों की नसियां में आजाइये। यद्यपि स्थान दूर था, दोपहर की धूप भी कड़ी थी और सहस्रों मनुष्यों का ऐसी गर्मी के समय एकत्र होना चिन्ता की बात थी, परन्तु स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर ही लिया और १॥ बजे ही वहां जा विराजमान हुए। जब दो बजने में ५ मिनट रहगये तब श्रीस्वामीजी को नियमित स्थान पर बिठलाया गया। शास्त्रार्थ मौखिक हो अथवा लेखबद्ध इस विवाद में ही २॥ बज गये, बार २ आग्रह करने पर भी हमारे जैनीभाई व उनके पंडितजी महाराजने लेखबद्ध शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया। तब स्वामीजी ने समय को टलता हुआ देख मौखिक शास्त्रार्थ करना ही स्वीकार कर लिया और एक जैनी महाशय ही के सभापतित्व में शास्त्रार्थ करना आरम्भ कर दिया॥

ओ३म् ॥

## ( स्थान—गोधों की नसियां )

समय २ बजे दोपहर.

### सभापति—

## सेठ ताराचन्दजी दिगम्बरी.

वैरयाजी, प्रश्न—पदार्थों का उद्देश्य लक्षणों से निश्चय किया जाता है, सृष्टि के बनने में ईश्वर का कर्तृत्व क्या?, परमाणु में क्रिया तथा सूर्य्य चन्द्र आदि के आकार रहने से वे उन २ रूपों में परिणमित होगये। एक देश से दूसरे देश में प्राप्त होने का नाम क्रिया है। जब परमेश्वर से कोई स्थान खाली ही नहीं तब उसमें गति किस प्रकार हो सकती है। जिसमें स्वयं गति न हो वह दूसरे को किस प्रकार गति देसकता है। यदि यह माना जाय कि परमेश्वर ने सृष्टि की इच्छा की और परमाणुओं को सूर्य्य चन्द्रादि के आकार में बनजाने की आज्ञा दी और वे

एक २ परमाणु को उठा २ कर जोड़ा तो परमात्मा साकार हुआ और साकार होगा तो एकदेशी होगा और उसकी सर्वव्यापकता जाती रहेगी।

स्वामीजी,उत्तर—क्रियावान् ही क्रिया दे यह नियम नहीं। चुम्बक पत्थर स्वयं नहीं हिलता, परन्तु लोहे को हिलादेता है। इससे सिद्ध है कि क्रिया से क्रिया उत्पन्न नहीं होती, किन्तु शक्ति से क्रिया उत्पन्न होती है। इच्छा अप्राप्त इष्ट की हुआ करती है, कोई पदार्थ परमेश्वर को अप्राप्त नहीं, इस कारण परमात्मा में इच्छा करना नहीं घटता। क्रिया दो प्रकार की होती है, एक इच्छापूर्वक और दूसरी नियमपूर्वक। इच्छापूर्वक क्रिया जीव की होती है और नियमपूर्वक परमात्मा की। ईश्वर में क्रिया स्वाभाविक है "स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च"। सृष्टि में हरएक क्रिया नियमपूर्वक होरही है सूर्य्य चन्द्र आदि सब में नियमपूर्वक क्रिया है। वृक्षादि के एक २ पत्ते में नियमपूर्वक क्रिया है, जो अपने नियामक का लक्ष्य कराती है। सृष्टि और जगत् दोनों शब्द भी अपने बनाने वाले का लक्ष्य कराते हैं। सृष्टि वह जो बनाई गई हो और जगत् वह जो चले। न कोई पदार्थ अपने आप बन सक्ता है न चल सक्ता है। परमाणुओं में गति है नहीं, इसलिये बनाने और चलाने वाला कोई अवश्य होना चाहिये। यदि परमाणुओं में स्वाभाविक गति होती तो उनका संयोग नहीं होसक्ता था, क्योंकि स्वाभाविक गति का भेद सदा बना रहता। जो परमाणु जिससे जितनी दूर पर जारहा था उतनी ही दूर पर चला जाता। परमाणुओं में आकार भी नहीं, हरएक कार्य्य में ३ चीजें होती हैं, एक आकृति, दूसरी व्यक्ति, तीसरी जाति। मिट्टी में ईंट की शक्ल नहीं न ईंट में मकान की, तब कहां से आई। हरएक कहेगा ईंट की शक्ल कुम्हार के और मकान की शक्ल इञ्जीनिअर के ज्ञान से, सिद्ध

रवाला है, जन्य है, साकार जन्य होता है। यथा घट साकार है, जन्य है, परमाणु आकारवाले नहीं तब परमाणुओं में आकृति कहां से आई।

परमात्मा ने आज्ञा दी और परमाणुओं ने सुना यह आर्य्यसमाज का दावा ( सिद्धान्त ) नहीं, परमात्मा एक २ पदार्थ को लेकर जोड़ता है यह ठीक नहीं, यह दोष एकदेशी और परिच्छिन्न पदार्थ में होता है परमात्मा सर्वव्यापक है, जगत् उसके अन्दर है। अन्दरूनी पदार्थ में गति देने के लिये हाथ पैर आदि इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं, इसीं लिये कहा गया था कि "अपाणि पादो यवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः"। शरीर के घावों को भरने के लिये जो खून आता है उसे कौनसा हाथ खींचकर लाता है ?।

वरैयाजी—चुम्बक का आकर्षण नित्य है, परमाणु नित्य है, ईश्वर भी नित्य है, इसलिये ईश्वरप्रदत्त क्रिया नित्य रहनी चाहिये। सृष्टि नित्य रहनी चाहिये। सृष्टि और प्रलय दो विरुद्ध बातें हैं। एक क्रिया के संयोग वियोग दो विपरीत गुण किस प्रकार हो सक्ते हैं, द्रव्य गुणवान् है, संयोग वियोग में गुण होने चाहियें। न्यायशास्त्र का सिद्धान्त है कि किसी द्रव्य की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता, तब सृष्टि का नाश होकर प्रलय क्योंकर होता है।

कार्य्य व्यभिचारी होता है कोई कर्त्ता से उत्पन्न होता है कोई विना कर्त्ता के। जौ चना आदि के खेत बोने से होते हैं, परन्तु घास जड़ी बूटी आदि विना कर्ता के स्वयं ही उत्पन्न होजाती हैं। यह कहना भी ठीक नहीं कि सृष्टि में कार्य्य नियमपूर्वक ही होते हैं किसी मनुष्य को इन्द्रियविहीन देखते हैं किसी को इन्द्रियसहित, कोई धनाढ्य होता है कोई दरिद्र।

स्वामीजी–परमात्मा का स्वभाव मैंने श्रुति के आधार पर क्रिया बतलाया है न कि सृष्टि रचना। ईश्वर की शक्ति से दीहुई क्रिया नित्य है। संयोग और वियोग दो विरुद्ध क्रियाएं नहीं वरन् क्रिया के फल हैं। क्रिया के दो फल होते हैं–१–संयोग, २–वियोग। एक गेंद पूर्वको फेंकी गई, परन्तु दीवार से लगकर फिर लौट आई। इसही प्रकार जीवों के कर्म्मों के व्यवधान से संयोग और वियोग अर्थात् सृष्टि और प्रलय होते हैं। संयोग और वियोग गुण हैं, परन्तु गुण ४ प्रकार के होते हैं–( १ ) स्वाभाविक, ( २ ) नैमित्तिक, ( ३ ) उत्पादक, ( ४ ) पाकज। कर्त्ता की क्रिया से उत्पन्न होनेवाला गुण पाकज होता है। न कोई वस्तु उत्पन्न होती है न नष्ट। कारण से कार्य्यरूप में आने का नाम उत्पत्ति और कार्य्य का कारण में लय होजाने का नाम नाश है।

घास जड़ी बूंटी आदि स्वयं उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु जिस प्रकार घड़ी के फनर में चाबी देने से बाकी पुरज़े चल उठते हैं इसही प्रकार इस सृष्टिरूपी घड़ी के सूर्य्यरूपी फनर में ईश्वर की शक्तिप्रदत्त क्रिया से मेघ बनता है, वर्षा होती है, घास आदि उगती हैं।

ईश्वर में दो गुण हैं। ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी है, अतः क्रिया के दो फल हैं। सृष्टि दो प्रकार की है एक न्याय की सृष्टि, दूसरी दया की सृष्टि। दया की सृष्टि में सूर्य्य, अग्नि, वायु, जल आदि हैं, जो ईश्वर जीवों पर दया करके उनके कल्याण के लिये देता है और आंख, कान, धन आदि न्याय की सृष्टि है जो ईश्वर न्याय करके जिस जीव के जैसे कर्म्म हैं उसको उसही प्रकार घटा बढ़ाकर देता है।

और अमुक में नहीं, न यही कि अमुक पदार्थ के होने से परमात्मा होता है और उसके नष्ट होजाने पर नष्ट होजाता है"।

वरैयाजी–गेंद के लौटने की क्रिया फेंकने वाले की नहीं, वरन् वह क्रिया दीवाल से उत्पन्न हुई और टक्कर लगना उसका हेतु हुआ। जब परमाणु निमित्त मिलने से गतिशील होते हैं वे स्वयं गतिवान् नहीं। जब ईश्वर अनादि है तो उसकी स्वाभाविक क्रिया से गति मिलने के कारण सृष्टि नित्य रहनी चाहिये और इसलिये यह नहीं कहा जासक्ता कि वह कभी उत्पन्न हुई। उत्पन्न होना विभाव कहा जायगा स्वभाव नहीं, इस कारण सृष्टि अनादि है।

स्वामीजी–पंडितजी ने अभी कहा था कि क्रियावान् ही गति देसक्ता है। अब यह कहना कि गेंद के लौटने की गति दीवार से उत्पन्न हुई "वदतो व्याघात" है। जब क्रिया रहित पदार्थ से गति नहीं आसक्ती तो दीवार से गति क्योंकर आई?। ईश्वर नित्य है उसकी क्रिया भी नित्य है, संयोग और वियोग दो क्रियाएं नहीं। मैं पूर्व बतला चुका हूं कि संयोग और वियोग एक ही क्रिया के दो फल हैं। एक ही पावर इञ्जन से निकली हुई क्रिया जुदी २ मशीनों में जाकर जुदे २ काम करती है। कहीं काटती है, कहीं जोड़ती है, इसही प्रकार दैविक क्रिया एक है परन्तु जीवों के कर्म्मों के व्यवधान से होने वाली सृष्टि और प्रलय के कारण विरुद्ध फल वाली ज्ञान पड़ती है। जिन परमाणुओं का संयोग होगा उनके लिये यह आवश्यक ही है कि उनका वियोग भी हो, इसलिये सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि होती चली आई है। "हम यह नहीं कहते कि सृष्टि कभी उत्पन्न हुई। सृष्टि ऐसीही चली आई है और ऐसी ही चली जायगी" जैनियों के इस कथन से सृष्टि की उत्पत्ति सिद्ध होती है। सृष्टि सावयव पदार्थों का

प्रथम उत्पन्न होता है अर्थात् कारण से कार्य्य रूप में आता है, फिर बढ़ता है और फिर उसकी अवस्था में परिवर्त्तन होता है। अर्थात् परिणमन तीसरा विकार है। जब सृष्टि परिणमनशील है तो इसकी पहली दो अवस्थाएं भी अनिवार्य्य हैं। यह जन्यत्व से रहित नहीं हो सक्ती. क्या वादी कोई ऐसा उदाहरण देसक्ता है कि कोई पदार्थ परिणमनशील हो परन्तु उसका जन्यत्व न हो।

वरैयाजी-मैं विषयान्तर में नहीं जाना चाहता एक २ विषय का निर्णय करूंगा। प्रश्न मेरा यह है कि ईश्वर का स्वभाव नित्य है और स्वभाव में विच्छेद हो नहीं सक्ता, अतः सृष्टि सदा बनी रहनी चाहिये। अग्नि का स्वभाव जलाना है वह सदा बना रहता है उसमें विच्छेद नहीं होता।

स्वामीजी-मैं विषयान्तर में नहीं जाता। आपने सृष्टि के उत्पन्न होने के विषय में कहा था उसका मैंने दलील से उत्तर दिया है। दलील देना, दृष्टान्त देना और माँगना विषयान्तर नहीं। सृष्टि बनी यह आर्य्यसमाज का सिद्धान्त नहीं। आर्य्यसमाज सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है और अनादि पदार्थ विना हेतु के नहीं होते। जैसे सूर्य्य के विना रात दिन नहीं होते इसही प्रकार सृष्टि और प्रलय का हेतु ईश्वर है।

सृष्टि और प्रलय यह स्वभाव में विच्छेद नहीं, परन्तु यह क्रिया के दो फल हैं जो जीवों के कर्म्मों के व्यवधान से होते हैं। सूर्य्य की एक क्रिया गर्म्मी देना है, परन्तु जिसका मिजाज गर्म्म है उसको उससे दुःख होता है। जिसका ठण्डा है उसको सुख मालूम होता है।

वरैयाजी—जब ईश्वर का स्वभाव क्रिया देना है तो क्रिया सदा बनी रहनी चाहिये। ईश्वरप्रदत्त क्रिया को जीव रोक नहीं सकता, अगर रोकदे तो वह ईश्वर से प्रबल होगया।

सूर्य्य की किरणें प्रति दिवस निकलती हैं कोई उनको रोक नहीं सकता। पानी के तेज़ बहाव को मनुष्य पत्थर आदि लगाकर बदल देता है। क्या कोई कह सकता है कि किसी ने पानी के बहाव को रोक दिया। बदलना भी तो क्रिया है। जीव ईश्वर की प्रजा है न कि प्रतिपक्षी। पाप पुण्य करती हुई प्रजा राजा की शत्रु नहीं होती। प्रलय में भी एक क्षण क्रिया स्थिर नहीं रहती।

वैरयाजी—प्रलय में क्रिया नहीं रहती। सृष्टि में भी दीवार आदि को स्थिर देखते हैं। क्रिया यदि स्वाभाविक है तो कहां चली जाती है।

स्वामीजी—सत्य के लिये दृष्टान्त होता है। जीव का स्वाभाविक ज्ञान नित्य है। सुषुप्ति में ज्ञान कहां चला जाता है। न सुषुप्ति में क्रिया ही नष्ट होती है। सुषुप्ति में क्रिया अन्दरूनी रहती है, जाग्रत् में बाहिरी। परमाणु प्रलय में टूटते हैं। दीवार आदिक में परमाणु प्रत्यक्ष में टूटते रहते हैं। स्वभाव रूपान्तर होना है। रूपान्तर क्रिया विना नहीं हो सकता। सब पदार्थों में क्रिया ( तबदीली ) होती रहती है। बनना बिगड़ना दोनों स्वभाव नहीं हैं। जीवात्मा दिनमें सज्ञान रहता है रात्रि में ज्ञान रहित, परन्तु यह स्वभाव में भेद कहाता है। रोशनी कांच के रंगों के समान बदलती दिखलाई देती है वह रोशनी का विकार नहीं।

वैरयाजी—जीव का ज्ञान अशुद्धावस्था के कारण विभाव होगया, स्वभाव नहीं रहा। परन्तु ईश्वर का विभाव नहीं होता प्रलय और सृष्टि में क्रिया एकसी रहती है। क्रिया परिणमनशील नहीं क्योंकि स्वभाव है। क्रिया यदि हमेशा नहीं रहती तो ईश्वरप्रदत्त नहीं।

स्वामीजी—जीव में कर्म आदि की बजह से अशुद्धि आजाती है। अन्यथा—

१—जीव में अशुद्धि कैसे आई।

अग्नि में गर्म्मी व पानी में सर्दी स्वाभाविक है।

कार्य्य अनित्य होता है, क्रिया अनित्य नहीं। घड़ी का चलना कर्त्ताप्रदत्त स्वभाव है। परिणमन आप सब का बतलाते हैं, परन्तु परिणमन तीसरा विकार है। परिणमनशील पदार्थों के जायते और वर्धते दो कारण होते हैं। जब परिणमनशील मानेंगे तो जायते व वर्धते भी मानना पड़ेगा। उत्पत्तिशून्य में परिणमन नहीं। क्रिया की शक्ति नहीं बदलती, कार्य्य बदलता है।

आप एक उदाहरण दो जिसमें परिणमन हुआ हो और उस पदार्थ का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं हो।

वरैयाजी-स्वभाव नित्य है, जब क्रिया ईश्वर का स्वभाव है तो सृष्टिकाल में जो सूर्य्य आदि दीखते हैं वह प्रलयकाल में क्यों नहीं रहते ?। आप विषयान्तर में जाते हैं।

स्वामीजी-क्रिया का फल संयोग वियोग दोनों है। संयोग सृष्टि और वियोग प्रलय। स्वाभाविक क्रिया नियमपूर्वक होती है और वैभाविक क्रिया इच्छापूर्वक होती है। सूर्य्य आदिक दया की सृष्टि हैं चक्षु आदिक न्याय की। दृष्टान्त का मांगना विषयान्तर नहीं।

वरैयाजी-प्रलय के परमाणु मिलाये जायंगे तो स्थिति आगई। यदि सम्पूर्ण परमाणुओं में क्रिया आगई तो फिर वे मिलने नहीं चाहियें। चुम्बक लोहे को खींचता ही है हटाता नहीं। यदि कोई अधिक शक्ति वाला हटा दे तो वह उसका कार्य्य कहा जायगा। संयोग वियोग एक हरकत से नहीं होते, व्यवधान आने पर वियोग होता है॥

स्वामीजी-वाह! उदाहरण दिया आपने चुम्बक का। उदाहरण गति का नहीं मांगा गया, उदाहरण इस बात का मांगा गया कि

ही नहीं। पानी की गति को पत्थर रोकता नहीं अतः पत्थर बलवान् नहीं होसकता। कोई पदार्थ जन्य न हो और परिणमनशील हो इसका एक उदाहरण दो।

वरैयाजी–मैं वधिर होने के कारण सुन नहीं सका।

( दूसरे ने बतलाया )

सब पदार्थ नित्य हैं, कोई कभी उत्पन्न नहीं हुआ। किसी वस्तु की उत्पत्ति अथवा विनाश होना न्यायशास्त्र से विरुद्ध है। वस्तुओं का अवस्थान्तर होता है। परमेश्वर में भी विकार है कभी सृष्टि को बनाता है कभी बिगाड़ता है। प्रश्न मेरा यह है कि यदि परमेश्वर ने स्वभाव से क्रिया दी तो भी फिर क्रिया दिये हुए पदार्थों में संयोग नहीं होना चाहिये वे तो एकही दशा में दौड़ते चले जाने चाहियें।

स्वामीजी–ईश्वर सर्वव्यापक है। सब पदार्थ उसके अन्दर हैं। अन्दर के पदार्थों में दिशाभेद नहीं। एक ओर से हरकत नहीं दी-जासक्ती। रूपान्तर प्रतिपत्ति=परिणाम, अवयवान्तर प्रतिपत्ति=विकार। प्रकृति अवस्था है, द्रव्य नहीं। ईश्वर में रूप नहीं अतः रूपान्तर नहीं।

वरैयाजी—एक स्वभाव के दो विरोधी गुण नहीं हो सकते। ईश्वर अखंड है जिसके टुकड़े नहीं होते। एक क्रिया की दोनों तरफ़ से हरकत नहीं। क्या दोनों हाथों से परमेश्वर गति देता है?।

स्वामीजी—अन्दर की क्रिया के लिये यह नियम नहीं है। ज़ख्म के भरने के लिये किसी इन्द्रिय की आवश्यक्ता नहीं। पेट में मल है परन्तु बदबू नहीं मालूम होती। परमात्मा विभु है उसमें तरफ़ ( दिशा ) का भेद नहीं हो सकता। यह दोष परिच्छिन्न में हो सकता है। ईश्वर आपने परिणामी बतलाया था, अब अखंड बतलाया। परिणामी की शक्ति बदली खंड होगया, अखंड कहां रहा।

नहीं समझे। स्वरूप को समझे विना उसके गुण का ख़याल किस प्रकार हो सकता है।

जब ईश्वर को अखण्ड बतलाते हो तो जन्य पदार्थ के विषय में माँगे हुए उदाहरण में उसका उदाहरण विषम है।

वरैयाजी–स्वभाव एकसा होता है। क्रिया एकसी होनी चाहिये। अंदर की क्रियाओं में भी विपरीत दिशाओं में क्रिया नहीं होसकती।

अखंड और परिणामी में विरोध नहीं, अखंड उसे कहते हैं जिसका खंड न हो। रूपान्तर से परिणाम होता है जिसे खंड नहीं कहा जासक्ता। जीव भी कभी घोड़ा होता है कभी चैंटी होता है, चैंटी से घोड़ा होना जीवका रूपान्तर होना सिद्ध करता है न कि खंड होना। मेरा प्रश्न फिर वही रहा कि विपरीत दशाओं में एक क्रिया नहीं रहती।

स्वामीजी–अन्दरूनी क्रिया चक्करदार होती है उसमें दिशाभेद नहीं। दृष्टान्त से अपने कथन को सिद्ध कीजिये।

घोड़ा हाथी चींटी आदि का उदाहरण विषम है। घोड़ा आदि शरीर बनता है न कि जीव। एक पुरुष जो महल में बैठा हुआ है उसे यदि जेलख़ाने में बिठला दिया जाय तो उसकी अवस्था में भेद आजायगा न कि उसके जीव में। शरीर और जीव एक नहीं हैं। शरीर मकान है, मकान बदलता है, उसमें बैठनेवाला नहीं। एक पुरुष जो बड़ेभारी कमरे में बैठा हुआ है यदि उसको एक कोठरी में बैठा दिया जाय तो जीव की शक्ल बदल गई–यह नहीं कहा जासकता। हाथी, घोड़ा शरीर में परिणमन है। किसी वस्तु की शक्ल आकाश के निकल जाने से बदलती है। गेंद को दबाया उसके भीतर से आकाश निकल गया अर्थात् कुछ कम होने से खंडन होता है। जीव में से कुछ कम नहीं होता अतएव उसका खंडन नहीं, अतः जीव परिणामी नहीं। सक्ष्म में स्थल

नहीं आता। आग में पानी की सर्दी नहीं आसकती, परन्तु पानी में आग की गर्मी आती है। इसलिये सूक्ष्म पदार्थ में स्थूल के गुण नहीं आसकते। जीव और परमात्मा सूक्ष्म है, चेतन सब से सूक्ष्म है इसलिये उनमें रूप नहीं। जब रूप नहीं तो रूपान्तर कैसा?।

वरैयाजी–एक रूप से दूसरे रूप का होना परिणाम है। रूप का अर्थ वर्ण नहीं परन्तु स्वरूप। जीव जब क्रोधी हुआ तब उसका रूप बदल गया। जब वह क्षमावान् हुआ तब दूसरा रूप होगया। यह शरीर का रूप बदलना नहीं कहा जासकता। जीवात्मा का रूप बदलता है। यदि ऐसा नहीं मानाजाय तो मुर्दे शरीर का रूप क्यों नहीं बदलता। इसलिये अखंड जीव में भी परिणाम होता है।

आकाश सर्वव्यापी है निकल कहां गया! आकाश जहां का तहां मौजूद है। एक चीज़ दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। प्रकृति के परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता। घट आदिक में न कोई दूसरी चीज़ आती है और न जाती है। हमारे मत में तो जीव ही ईश्वर होजाता है और ईश्वर ही जीव हो जाता है।

स्वामीजी–रेल में बैठे हुए हम रोज़ कहा करते हैं कि अजमेर आगया, लाहोर आगया, आगरा आगया, परन्तु क्या वास्तव में ये नगर आते हैं? नहीं, यह कथन उपचारक प्रयोग है। आकाश का निकल जाना भी उपचारक प्रयोग है। जब जीव ईश्वर होकर सिद्धशिला पर सदा के लिये लटका रहा तो ईश्वर जीव क्योंकर होसक्ता है।

जीव ईश्वर होजाता है यह कथन विषम है। ईश्वर कहते हैं ऐश्वर्यवाला, परन्तु जैनियों का जीव तो वीतराग होता है। जिसके पास कुछ न हो उसे वीतराग कहते हैं। जिसके पास कुछ हो ही नहीं, उसे ईश्वर कैसे कह सकते हैं?। फकीर को ईश्वर बतलाना बुद्धिमत्ता नहीं। परमात्मा वाचक जितने शब्द हैं उनके अर्थों से वीतराग का मेल कभी नहीं होसकता। विष्णु शब्द का अर्थ है कि

मुक्तावस्था में शरीर से निकल कर उर्द्ध्वगमन करता हुआ शिला से जाकर लग जाता है जिससे उसका एकदेशी होना स्पष्ट है। जब एकदेशी हुआ तो विष्णु कैसे? इसही प्रकार महेश और ब्रह्मा आदिक के शब्दार्थ करने से वीतराग के लक्षण नहीं मिलते। यदि वीतराग जीव ब्रह्मा विष्णु महेश परमात्मा वाच्य ईश्वर बनजाता है तो शब्दार्थ कर लक्षण बतलाओ। कहने मात्र से काम नहीं चलता।

वरैयाजी–गुणसमुदायो द्रव्यम्। जीवचेतनलक्षणत्वम्। पुद्गल स्पर्शरसरूपलक्षणत्वम्। कारमाण वर्गणाएं सम्पूर्ण लोक में फैली हुई हैं। राग द्वेषादि से कारमाण वर्गणाएं जब खिचती हैं तब कर्म्म होता है और पूर्वकृत कर्मों से रागद्वेषादि का अनादि से सम्बन्ध है (सभापति ने रोक दिया विषयान्तर में न जाइये) तब वादी ने प्रश्न किया कि ईश्वर सृष्टि का उत्पादक क्यों होना चाहिये?।

स्वामीजी–जगत् उसको कहते हैं जो चले, सृष्टि उसे कहते हैं जो सृजी गई है। चलना और बनना क्रिया से होता है। क्रिया विना कर्त्ता के होती नहीं, इसलिये सृष्टि का कर्त्ता स्वयंसिद्ध है। कर्त्ता दो प्रकार के होते हैं– एक स्वाभाविक और दूसरा नियमपूर्वक। हरएक वस्तु संयोगयुक्त है, इसलिये संयोग का देने वाला कर्त्ता होगा। हरएक फल फूल पत्ते आदिक वस्तु में जो बनावट है वह नियमपूर्वक कर्त्ता का लक्ष्य करा रही है। ग्रहण आदिक नियमपूर्वक होता है। क्रिया का कर्त्ता विना चेतन के हो नहीं सकता, इसलिये सिद्ध है कि सृष्टि का कर्त्ता चेतन ईश्वर है।

वरैयाजी–कार्य विना कर्त्ता के नहीं होता, यह कथन ठीक नहीं। घास फूस आदि स्वयं उगती है, इसे कोई बोता नहीं। क्रिया स्वभाव से है तो प्रलय में क्रिया क्यों नहीं होती। कितनेही कर्म्म कर्त्ता से उत्पन्न होते हैं, कितने ही विना कर्त्ता के। जो चने

स्वामीजी–पंडितजी ने सृष्टिकर्त्ता मानलिया। घास फूस आदि सूर्य्य के आकर्षण तथा पानी के हेतु से होते हैं। यह मैं पहिले ही कह चुका हूं। विना कर्त्ता की सृष्टि का एक उदाहरण दीजिये। घड़ी विना चलाये नहीं चलती। ईश्वर के सब काम नियमपूर्वक हैं। अन्दर की गति में दिशाभेद नहीं होता, परन्तु वह क्रिया चक्कर में होती है। ग्रहण आदिक नियमपूर्वक कर्त्ता का लक्ष्य करा रहे हैं। इसका आपने उत्तर नहीं दिया।

वरैयाजी–मैंने सृष्टि का कर्त्ता कबूल नहीं किया। मैंने यह कहा था कि कार्य्य दो प्रकार से होते हैं एक कर्त्ता द्वारा दूसरे विना कर्त्ता के। विना चेतन के भी कर्त्ता हो सकता है, जैसे सूर्य्य।

स्वामीजी–एक पदार्थ की दो मुख्तलिफ़ क्रिया हो सकती हैं। एक जीव जिसके स्वभाव में गर्मी अधिक है उसको सूर्य्य से दुःख होता है और जिसके स्वभाव में सर्दी अधिक है उसको सुख होता है। इसमें सूर्य्य के दो कार्य्य नहीं, परन्तु जीव के कर्म्मों के स्वभाव से सुख दुःख होता है। अन्दर की क्रिया के लिये दिशा का भेद नहीं होता। जो जिसके सामने आया मिलगया। हांडी में चावल पकते हैं, एक दूसरे से मिल जाते हैं। यह नहीं होता कि चावल सब एकही दिशा में जाते हों। आग की हरकत से चावल मिले, अतएव आग का स्वभाव संयोग वियोग हुआ। आग की हरकत स्वाभाविक है। ईश्वर बाहर से हरकत नहीं देता। वह आग के समान अन्दर से हरकत देता है, क्योंकि वह परमाणु परमाणु में व्याप्त है। हरकत संयोग वियोग में रहती है। हरकत जाती नहीं सदा बनी रहती है। हरकत के दो फल प्रत्यक्ष हैं सूर्य्य की एक क्रिया के दो फल सुख और दुःख दोनों हैं।

वरैयाजी–सुख दुःख देना सूर्य्य का स्वभाव नहीं। उसका स्वभाव गर्मी देना है। अग्नि के परमाणु सब में व्याप्त हैं। इसलिये वह खंड

टता। साइंस भी ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानता। साइंस पदार्थों के स्वभाव से सृष्टि मानता है।

स्वामीजी—सुख दुःख अपने स्वभावानुसार पाये जाते हैं। साइंस भी प्रत्येक वस्तु का हेतु बतलाता है। जिससे सृष्टि का हेतु परमात्मा सिद्ध होता है। अग्नि का उदाहरण विषम नहीं। उदाहरण धर्म में दिया जाता है। अग्नि परमाणुओं में व्याप्त है वह चारों ओर से हरकत देता है। ईश्वर भी सारे देश में व्याप्त है। देगचे में गर्मी एकदेशी नहीं। ब्रह्माण्ड में परमात्मा भी एकदेशी नहीं, इसलिये अग्नि का उदाहरण विषम नहीं। आप धान और चावल का दृष्टान्त जो कि भिन्न भिन्न समय में पैदा होते हैं अनादि के साथ कैसे देदिया करते हैं। चावलों को हरकत जो मिलती है वह भी अन्दर की हरकत है और सृष्टि की हरकत भी परमात्मा के अन्दर से है।

वरैयाजी—दृष्टान्त सब देशों में नहीं मिलता। ईश्वर एक है उस में दो विरुद्ध क्रिया में हैं। ईश्वर एक पदार्थ है। अग्नि के परमाणु भिन्न २ होते हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म। विषय धर्म मिलाने के लिये धान का उदाहरण दिया गया था।

स्वामीजी—इच्छा कर्म के निमित्त से उत्पन्न होती है इसलिये इधर उधर जाती है। अग्नि में इच्छा विषम है। अग्नि एक है, दो नहीं। जहां वैधर्म्य नहीं हो वहां वैषम्य नहीं। जीव और ईश्वर जाति से विभु हैं। परमाणु बहुत हैं, परन्तु अग्नि एक है। वैधर्म्य का विषय एक है अतः वैषम्य नहीं। गति देने की ईश्वर और अग्नि दोनों में एकता है। गति या तो अग्नि से आयेगी वा ईश्वर से। इसही लिये अग्नि शब्द ब्रह्म के नाम में भी आता है। अग्नि और ईश्वर के धर्म विषम हैं यह किसी शास्त्र से सिद्ध करिये।

इसके पश्चात् ५ मिनट रह गये। बा० मिट्ठनलालजी वकील

भङ्ग न हुई और जार्ज पंचम के लिये चीअर्स दीं। तत्पश्चात् सभापति ने धन्यवाद देते हुए यह कहा कि पंडितजी कहते हैं कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं हुआ। यह जैन धर्म्मावलम्बी सभापति होने का परिणाम है। पाठक महाशय विचार सकेंगे कि वादी की कौनसी युक्ति शेष रह गई जिसका उत्तर नहीं मिला। एक २ प्रश्न का उत्तर दो दो तीन तीन वार दिया गया। तिस पर भी हर दफे यही कहा गया कि "भाइयो ! मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला" इसका तो इलाज ही नहीं "मुखमस्तीति वक्तव्यं"। जुड़ना और अलग होना यह हरकत ( क्रिया ) के दो फल हैं। संयोग उस का ही होगा जिस का वियोग हुआ हो और वियोग उसका अवश्य होगा जिसका संयोग हुआ है, यह साधारण बात भी समझ में न आवे तो यही कहना पड़ेगा कि "सूर्य्यस्य किं दूषणम्॥

इस शास्त्रार्थ का परिणाम यह हुआ कि पं० दुर्गादत्तजी शास्त्री तथा पं० शम्भुदयालजी ने दूसरे ही दिन जैनधर्म्म का परित्याग करदिया। इससे हमारी जैन तत्वप्रकाशिनी सभा तथा साधारणतया सब जैन भाइयों का खिसिआनपन यहांतक बढ़ा कि जिसका वर्णन करना बन नहीं पड़ता। शायद स्वामी शंकराचार्य्यजी के पश्चात् जैनी भाइयों को इतना उदासीन बनाने वाला यह पहिला ही दिवस था।

स्वामीजी ने शास्त्रार्थ जारी रखने के लिये जैन पण्डितों से बार २ अनुरोध किया, परन्तु उन्होंने यह कह दिया कि आप संन्यासी हैं हम गृहस्थ हैं। हमें पेट का भी फ़िकर है। शास्त्रार्थ होता हुआ जब नहीं देखा तो स्वामीजी महाराज एक दिन ठहर कर पंजाब चले गये, परन्तु जिस कारण से कि हमारे जैनी भाई खिसिआ रहे थे उन्होंने मैदान खाली देख फिर शास्त्रार्थ का नोटिस देदिया। दैवयोग से फिरोज़ाबाद गुरुकुल के

निर्भयता से जैन सभा में जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और रात्रि के डेढ़ बजे तक संस्कृत में शास्त्रार्थ करते रहे और प्रातःकाल तक शास्त्रार्थ करने की सन्नद्धता दिखाई, परन्तु "कर्म्म द्रव्य है या गुण, द्रव्य है तो उसका गुण क्या, सुख वा दुःख दो विरुद्ध गुण एक द्रव्य के नहीं होसक्ते, यदि गुण है तो किस द्रव्य का" इस प्रश्न पर जब जैन पंडित निरुत्तर होगये तब सभापति ने शास्त्रार्थ बंद करदिया। इससे जैनियों की खिसिआनपन और भी बढ़गई। फिर लेखबद्ध शास्त्रार्थ के लिये नोटिसबाज़ी आरम्भ हुई। स्वामी दर्शनानन्दजी पञ्जाब जाते २ दिल्ली से ही लौटा लिये गये। जैनी भाइयों के खिसिआनपन को देख सर्वसाधारण की भीड़भाड़ में शास्त्रार्थ करना मुनासिब न समझा गया, परन्तु जैनी भाई सर्वसाधारण की भीड़भाड़ में ही शास्त्रार्थ करने का आग्रह करते रहे। सर्वसाधारण की भीड़भाड़ में ऊधम दंगा रोकने के लिये जैन नेताओं से प्रबन्ध का भार अपने ऊपर लेने के लिये कहा गया, पर उन्होंने ज़िम्मेवरी स्वीकार न की।

आख़िरकार तारीख़ ११ जुलाई १२ को शास्त्रार्थ के नियमादि निश्चित करने के लिये दोनों ओर से एक कमेटी नियत कीगई, जिसमें आर्यों की ओर से श्रीयुत बा० गौरीशंकरजी बैरिस्टर एटला और श्री० बा० मिट्ठनलालजी बीए. एल. एल. बी. वकील तथा जैनी भाइयों की ओर से श्रीयुत सेठ ताराचन्दजी रईस, श्रीयुत बा० प्यारेलालजी रईस नसीराबाद और श्रीयुत सेठ चौथमलजी, श्रीयुत सेठ पन्नालालजी भैंसा अजमेर थे, उक्त कमेटी ने ११ बजे दिन के श्रीमान् बा० गौरीशंकरजी बैरिस्टर की कोठी पर एकत्रित हो सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि "शास्त्रार्थ लेखबद्ध केवल पत्रद्वारा हो। और दोनों पक्ष से अब इस शास्त्रार्थ के विषय में विज्ञापन न छापे जावें" तिसपर भी ११ जुलाई १२ को जैनियों की ओर से २० [illegible]

ही जावेंगे और एक दो दिन में २० प्रश्नों का उत्तर आर्यसमाजी कदापि नहीं दे सकेंगे, परन्तु ज्यों ही इनका प्रश्नपत्र मिला त्यों ही स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज ने प्रश्नों का उत्तर लिखना आरंभ कर दिया और उसी दिन अर्थात् ता० ११ जुलाई को ही २४ पृष्ठ की पुस्तक छापकर प्रकाशित करदी, जिसमें जैनियों के २० प्रश्नों के उत्तर के अतिरिक्त २० प्रश्न अपनी ओर से जैनियों पर कर दिये जिनका उत्तर आज ३० जुलाई तक भी नहीं आया है।

कमेटी के नियमानुसार जैनतत्त्वप्रकाशिनीसभा इटावा के साथ पत्रद्वारा शास्त्रार्थ किया जारहा है, जिसको समय २ पर दोनों पक्ष अपने २ समाचारपत्रों में प्रकाशित करते रहेंगे।

॥ इति ॥